पं० मदनमोहन मालवीय का राजनीतिक चिन्तन

डॉ० भावना मिश्रा

उन्नीसवीं सदी में अनेक महान विभूतियों ने भारत भूमि पर अवतरित होकर पराधीन भारत के भाग्य को परिवर्तित करने का प्रयास किया। इसी शृंखला में पंडित मदनमोहन मालवीय (1861-1946) भारतीय पुनर्जागरण व पुनरुद्धार की सर्वाधिक महत्त्वशाली विभूतियों में एक थे। वे एक ओजस्वी वक्ता, राजनीतिक नेता, समाज सुधारक तथा हिन्दू पुनरुत्थानवाद के प्रबल समर्थक थे। यद्यपि मालवीयजी प्लेटो, अरस्तू की भाँति राजनीतिक दार्शनिक नहीं थे और न ही उन्होंने राजनीति पर व्यवस्थित व क्रमबद्ध रूप से अपने विचार किसी पुस्तक के माध्यम से प्रस्तुत किये, तथापि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में उनकी आजीवन सहभागिता एवं विभिन्न अवसरों पर उनके द्वारा व्यक्त किये गये राजनीतिक विचार एक सुसंगठित विचारधारा के रूप में हमारे समक्ष आते हैं। वे चार बार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष एवं दो बार अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष चुने गये। वे हिन्दू महासभा के प्रधान संवाहक भी थे। उन्होंने आजीवन भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की अतिवादी तथा उदारवादी धाराओं के बीच सेतु का कार्य किया। प्रस्तुत लेख उनके राजनीतिक विचारों, जो उनके विभिन्न लेखों, संपादकीय व भाषणों द्वारा अभिव्यक्त हुए, पर केन्द्रित है। उन्होंने विभिन्न मंचों से भारतीय राष्ट्रवाद, धर्म निरपेक्षतावाद, संघवाद तथा राज्यों की स्वायत्तता, प्रतिनिधित्वात्मक प्रजातन्त्र, स्वदेशी एवं स्वशासन, स्वतन्त्रता, न्याय, अधिकार, राजनीति का आध्यात्मीकरण, स्थानीय स्वशासन एवं संविधानवाद इत्यादि पर अपने विचार प्रकट किये जिनका उल्लेख निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है—

1. राष्ट्रवाद

महामना मालवीयजी के राजनीतिक चिन्तन का सबसे प्रखर तत्त्व उनकी राष्ट्रवादी अवधारणा है। जब उन्होंने भारतीय राजनीति में पदार्पण किया तब देश का राजनीतिक परिदृश्य विदेशी आधिपत्य से भारत की स्वाधीनता के लिये आन्दोलित था। मालवीयजी ने यह अनुभव किया था कि ब्रिटिश शासन के अधीन भारतीय जनमानस में धार्मिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक आधार पर मतभेद बढ़ गये थे। अतः एक सच्चे धार्मिक व्यक्ति की भाँति उन्होंने राष्ट्रीय ऐक्य, राष्ट्रीय जागरण व नवनिर्माण के लिए लोगों में कार्य-कुशलता, कर्त्तव्य निष्ठा व राष्ट्र के प्रति समर्पण की भावना जागृत करने का प्रयास किया। राष्ट्रीयता को परिभाषित करते हुए उन्होंने बताया कि राष्ट्रीयता प्रत्येक

Scanned with CamScanner

देशवासी के हृदय में राष्ट्र कल्याण की प्रबल कामना के रूप में निवास करती है और यह सद्इच्छा अन्य समस्त इच्छाओं में सर्वोच्च तथा धार्मिक, जातिगत, भाषागत एवं विचारगत मतभेदों से परे हैं। इसका लक्ष्य समाज के सभी वर्गों का कल्याण तथा शुभ जीवन की प्राप्ति है। उन्होंने स्पष्ट किया कि, ''एक देश के अन्तर्गत निवास करने वाले, एक ही संप्रभु शक्ति के अधीन, एक सरकार द्वारा संचालित एक ही कानून से समान रूप से मर्यादित, धार्मिक और मत-मतान्तरों की विभिन्नताओं के बावजूद किसी राजनीतिक विचारक की दृष्टि में एक राष्ट्र का ही निर्माण करते हैं।''[1] आगे उन्होंने कहा कि ''हम एक राष्ट्र हैं, एक राष्ट्र रहे हैं और विभिन्न प्रकार के मतभेदों के बावजूद एक राष्ट्र ही रहेंगे।''[2] राष्ट्रभक्ति मालवीयजी का धर्म था। वे कहा करते थे कि देशभक्ति द्वारा इतने धर्मों का सम्पादन होता हुआ देखकर भी यदि कोई धर्म के आगे देशभक्ति को कुछ नहीं समझता तो वह यथार्थ में धर्म के तत्त्व को नहीं जानता, धर्म शब्द मात्र उसकी वाणी में है अनुभव में नहीं।

राष्ट्रवाद की उत्कट अभिलाषा से युक्त मालवीयजी का हृदय राष्ट्रवाद के संकीर्ण व आक्रामक स्वरूप को नहीं स्वीकार कर सका था इसीलिये उन्होंने हिटलर और मुसोलिनी के अति उत्साही राष्ट्रवाद, जिसकी परिणति नाजीवादी व फासीवादी जैसी तानाशाह विचारधाराओं के रूप में हुयी तथा जो द्वितीय विश्व युद्ध का कारण बनी, का विरोध किया और यान्त्रिक राष्ट्रवाद के स्थान पर सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की स्थापना का समर्थन किया। उनकी सांस्कृतिक राष्ट्रवादी अवधारणा हिन्दू धर्म व दर्शन के प्राचीन सिद्धान्तों पर आधारित थी। विवेकानन्द और गान्धी की भाँति मालवीयजी का भी हिन्दू धर्म व संस्कृति की श्रेष्टता में विश्वास था और उन्होंने हिन्दुत्व की श्रेष्ठ मान्यताओं का समावेश अपनी राष्ट्रवादी अवधारणा के विकास में किया। यहाँ यह स्पष्ट समझ लेना आवश्यक है कि यद्यपि मालवीयजी हिन्दुत्व के प्रबल समर्थक थे तथापि उनकी राष्ट्रवादी अवधारणा का आधार बहुत व्यापक था। वे भारत राष्ट्र में निवास करने वाले सभी लोगों का समस्त कल्याण चाहते थे। जैसा कि उन्होंने कहा कि 'भारत हिन्दू मुसलमान, सिक्ख, पारसी इत्यादि सभी की मातृभूमि है।' वे भारत के लिये एक ऐसी नवीन राजनीतिक व्यवस्था का निर्माण करना चाहते थे, जो प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों पर आधारित हो और जहाँ सभी जातियों धर्मों व प्रान्तों का प्रतिनिधित्व हो तथा राज्य द्वारा नागरिको को प्राप्त अधिकारों के सुरक्षा की व्यवस्था हो।

राष्ट्रवाद की उपलब्धि के विभिन्न साधनों की चर्चा करते हुए मालवीयजी ने प्लेटों की भाँति शिक्षा को मानव-उत्थान व राष्ट्रीय परिवर्तन का सबसे सशक्त माध्यम बताया और विद्यार्थियों में राष्ट्रभक्ति की भावना जागृत करने के लिए शिक्षा के प्रसार की अनिवार्यता पर बल दिया। शिक्षा के अतिरिक्त उनके विचार से समाज में व्याप्त कुरीतियाँ भी शक्तिशाली भारतीय राष्ट्र की प्राप्ति में बाधा है। अत: 1935 के महासभा के पूना अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय सम्भाषण में उन्होंने भारतीयों से अस्पृश्यता

Scanned with CamScanner

जैसी सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का आह्वान किया और कहा कि राष्ट्रवाद की शिखा समस्त भारतीयों के हृदय में प्रज्वलित रहनी चाहिए।

अपनी व्यापक राष्ट्रवाद की अवधारणा के साथ मालवीयजी ने अन्तर्राष्ट्रवाद के सिद्धान्तों में भी अपनी आस्था प्रकट की। वसुधैव कुटुम्बकम् की सनातन भारतीय परम्परा के प्रति श्रद्धा रखने वाले मालवीयजी समस्त विश्व में शान्ति समृद्धि और न्याय की स्थापना के इच्छुक थे। इसी उद्देश्य से उन्होंने निःशस्त्रीकरण, सेना में कटौती सभी राष्ट्रों को समान व्यापार सुविधाएँ और एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना का समर्थन किया और विश्व के कई भागों में स्थापित साम्राज्यवाद और नस्लवाद का विरोध किया।

2. धर्म निरपेक्षतावाद

मालवीयजी की राष्ट्रवादी अवधारणा की भाँति उनका धर्म निरपेक्षतावाद का सिद्धान्त भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यही सिद्धान्त आगे चलकर स्वाधीन भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का एक प्रमुख आदर्श बना। वे एक परम्परावादी हिन्दू थे। उनका हिन्दुत्व सार्वभौम भ्रातृत्व, धार्मिक सहिष्णुता, समस्त प्राणीमात्र के सर्वतोन्मुखी कल्याण की कामना से जुड़ा था और मालवीयजी उसी रूप में सम्पूर्ण भारत में व्याप्त मूलभूत एकता सनातन धर्म के आधार पर स्थापित करना चाहते थे। यद्यपि उनका जन्म एक परम्परावादी हिन्दू परिवार में हुआ था तथापि धार्मिक संकीर्णताओं से परे उन्होंने धर्म को व्यक्ति के उदात्तीकरण का माध्यम माना। वे चाहते थे भारत एक ऐसा राष्ट्र हो जहाँ सभी धर्मों को पर्याप्त स्थान व सम्मान मिले। मालवीयजी का स्पष्ट विचार था कि हिन्दू धर्म एक ऐसा धर्म है जिसमें अन्य धर्मों मत मतान्तरों के लिये पर्याप्त स्थान है तथा हिन्दुत्व का लक्ष्य समस्त प्राणिमात्र की सेवा है।

यह मालवीयजी का धार्मिक कट्टरता के प्रति विरोध ही था कि उन्होंने 1909 में हिन्दू महासभा के गठन का विरोध किया था। यद्यपि परवर्ती इतिहास में मालवीयजी स्वयं भी महासभा की गतिविधियों से जुड़ गये तथापि उन्होंने सदैव ही महासभा के मंच से हिन्दू-मुस्लिम एकीकरण का ही प्रयास किया। इस सन्दर्भ में यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि यदि मालवीय जी ने 1909 में हिन्दू महासभा के गठन का विरोध किया था तब किन कारणों से बाद में उससे जुड़ गये? इस प्रश्न का उत्तर तत्कालीन भारत की राजनीतिक परिस्थितियों के अध्ययन से स्पष्ट हो जायेगा। उस समय 1905 में बंगाल विभाजन जिसने देश में सम्प्रदायवाद और आतंकवाद को जन्म दिया, 1906 में आगा खाँ के नेतृत्व में मुसलमानों के लिए ज्यादा प्रतिनिधित्व की माँग, 1909 का मार्ले मिण्टो सुधार अथवा भारतीय कौंसिल अधिनियम जिसमें मुसलमानों के लिये साम्प्रदायिक आधार पर अलग प्रतिनिधित्व की माँग तथा जहाँगीराबाद संशोधन इत्यादि ऐसे अनेक कारण थे जिन्होंने मालवीयजी को इस बात के लिए प्रेरित किया कि वे हिन्दु महासभा में भाग लेते हुए समाज में हिन्दुओं को

Scanned with CamScanner

दयनीय दशा से उन्हें उबारने के लिये जागरूक और सर्तक करें। जैसा कि मालवीयजी ने महासभा के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए बताया कि महासभा का मुख्य उद्देश्य १. हिन्दु समाज के प्रत्येक वर्ग को उनके अधिकारों व कर्त्तव्यों के प्रति जागरुक बनाना २. ब्रिटिश सरकार की 'बाँटो और राज्य करो' नीति के प्रति हिन्दुओं को सर्तक करना तथा ३. हिन्दुओं में सच्ची राष्ट्रवादी भावना जागृत कर तथा अन्य धर्मों के साथ सौहार्द पूर्ण सम्बन्ध रखते हुए एक संयुक्त स्वशासित भारतीय राज्य की स्थापना करना इत्यादि है।

धर्म के आधार पर सभी प्रकार के भेदभाव का उन्होंने आजीवन विरोध किया। भारतीय कौंसिल अधिनियम 1909 के साम्प्रदायकि आधार पर अलग करते हुए उन्होंने कहा कि, "The system of single votes which was an essential feature of Lord Morley's scheme has been cast to the winds, the injustice of double and plural voting which Lord Morley's tried to avoid has been given the fullest play."[3] मालवीयजी ने आशंका व्यक्त की कि पृथक निर्वाचन प्रावधानों से दोनों ही समुदायों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। उन्होंने स्पष्ट किया कि "इस व्यवस्था से हमारे कुछ हिन्दू भाई यह विचार करने पर बाध्य होंगे कि अब हिन्दुओं को एक आम राष्ट्रीय जीवन की प्राप्ति की आशा छोड़ देनी चाहिए और केवल अपने समुदाय के हित के लिए कार्य करना चाहिए जैसा कि मुस्लिम बन्धुओं ने किया है।" उन्हें इस बात पर असंतोष था कि ब्रिटिश सरकार 'arms act' पर मुसलमानों को छूट देकर और हिन्दुओं को छूट न देकर अपनी पक्षपात पूर्ण नीतियों का प्रदर्शन कर रही है।[4] इसी प्रकार स्थानीय निकायों में पृथक निर्वाचन की व्यवस्था लागू करने का विरोध करते हुए मालवीयजी ने कहा कि यह व्यवस्था हिन्दुओं और मुसलमानों को पूर्णतया विभाजित कर देगी। मालवीयजी ने बारम्बार अपने लेखों, भाषणों, सभाओं में इस बात पर बल दिया कि भारत का भविष्य हिन्दू अथवा मुसलमान नहीं बल्कि हिन्दू और मुस्लिम, पारसी, बौद्ध, ईसाई में है और अखण्ड भारत की स्थापना में समान न्याय की स्थापना और समतामूलक समाज के प्रत्येक वर्ग के लिये की गयी समान व्यवस्था ही सुदृढ़ राष्ट्र की स्थापना में एकमात्र मजबूत सीमेन्ट का कार्य करेंगे। स्पष्ट रूप से यह मालवीयजी का धर्मनिरपेक्षतावादी दृष्टिकोण ही था कि भारत को समान रूप से उन्होंने यहाँ निवास करने वाले सभी धर्मावलम्बियों का समवेत राष्ट्र माना। उनके विचार में धर्म के आधार पर किसी भी प्रकार का संघर्ष धर्म विरुद्ध व धर्म का अपमान होता है और इस मान्यता से राष्ट्रीयता के स्थान पर साम्प्रदायिकता को बढ़ावा मिलता है। इसी कारण उन्होंने साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का विरोध करते हुए ब्रिटिश सरकार के साम्प्रदायिक दृष्टिकोण की भर्त्सना की। मालवीयजी किसी भी स्तर पर धार्मिक कट्टरता व संकीर्णता से नहीं जुड़े थे वस्तुतः इसी आधार पर उन्होंने सावरकर, मुंजे, परमानन्द आदि का विरोध भी किया लेकिन यह भी सत्य है कि वे कोई भी ऐसा निर्णय नहीं स्वीकार कर सकते थे जो हिन्दू हितों

Scanned with CamScanner

के विपरीत हो, उदाहरण के लिए उन्होंने इस बात पर असन्तुष्टता व्यक्त की थी यू० पी० में हिन्दुओं की आबादी यद्यपि 70% है तथापि उनके पास कौंसिल में पर्याप्त सीटें नहीं हैं। इसी प्रकार 1921 के मालाबार दंगे जिसमें मुसलमानों ने हिन्दुओं का जबरदस्ती धर्मान्तरण किया, 1922 के मुलतान दंगों में मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं पर किये गये अत्याचारों ने मालवीयजी को बहुत मर्माहत किया और उन्होंने गया अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में मुसलमानों की आलोचना करते हुए कहा कि वे स्पष्ट तौर पर ब्रिटिश सरकार की बाँटो और राज्य करो कि नीति के प्रभाव में आ गये हैं। हिन्दुओं की दुर्दशा का प्रमुख कारण उनका असंगठित और धर्म विमुख होना है। वास्तव में दोनों समुदायों को एक होकर धर्म के नाम पर क्रियाशील होकर साम्प्रदायिक शक्तियों का विरोध करना चाहिए। हिन्दू और मुसलमान होने से पूर्व सच्चा भारतीय होना आवश्यक है। इसी प्रकार हिन्दू महासभा के बनारस अधिवेशन में असंतोष व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा कि देश में 22 करोड़ हिन्दू संगठित नहीं है तथा अपने मन्दिरों, पवित्र ग्रन्थों, स्त्रियों की रक्षा कर पाने में समर्थ नहीं है। उन्हें अपने हितों व विकास के लिये संगठित एवं जागरूक होना चाहिए। मालवीय जी ने सरकारी नौकरियों में 55% मुसलमानों के लिये आरक्षण जैसे बंगाल पैक्ट के प्रावधानों का भी विरोध किया।[5]

हिन्दू हितों की रक्षा के साथ-साथ मालवीयजी ने अनेक अवसरों पर यह स्पष्ट किया कि हिन्दू महासभा मुसलमानों के विपरीत नहीं है। 1927 के मद्रास कांग्रेस अधिवेशन में राष्ट्रवाद व हिन्दुवाद को महासभा का प्रमुख लक्ष्य बताते हुए अपने ऐतिहासिक भाषण में उन्होंने सभी मतभेदों से ऊपर उठकर स्वराज्य प्राप्ति के लिए संघर्ष करने, पृथक निर्वाचन की समाप्ति और संयुक्त निर्वाचन, मुसलमानों द्वारा गोवध और हिन्दुओं द्वारा मस्जिद के सामने बाजा बजाने पर प्रतिबन्ध, सभी जातियों, सम्प्रदायों में एकीकरण, एक राष्ट्र में निष्ठा इत्यादि पर बल दिया। मालवीयजी के इन्हीं स्पष्ट और अद्भुत विचारों से प्रभावित होकर मो० मुहम्मद अली ने कहा था कि "अल्पसंख्यकों के वास्तविक हिमायती पंडित मदनमोहन मालवीय हैं। मैं पंडित मालवीय में विश्वास रखने की प्रतिज्ञा करता हूँ। मैं उन्हें धोखा नहीं दूँगा। मैं विश्वास करता हूँ कि वे मुझे धोखा नहीं देंगे।"[6]

परवर्ती परिस्थितियों में जब मालवीयजी ने क्रमशः यह अनुभव किया कि हिन्दु महासभा अपने व्यापक दृष्टिकोण की बजाय संकीर्णता की ओर बढ़ रही है तब उन्होंने अपने विश्वास और मान्यताओं से समझौता करने के स्थान पर महासभा के कार्यकलापों से स्वयं को दूर करना उचित समझा। सन् 1936 में जबकि देश में साम्प्रदायिक निर्णय पर धर्म निरपेक्ष दृष्टिकोण शिथिल पड़ रहा था, महामना मालवीय ने सनातन धर्म महासभा में बोलते हुए सर्व धर्म सम्मान को सनातन धर्म का मूल माना।[7] इस प्रकार मालवीयजी ने जटिल परिस्थितियों में भी चट्टान की सी दृढ़ता के साथ अपनी धर्म निरपेक्ष आस्था को बरकरार रखा। उन्होंने धार्मिक आधार पर एक नये

Scanned with CamScanner

राष्ट्र की जिन्ना की माँग का विरोध किया और नेहरू रिपोर्ट का स्वागत किया जिसमें घोषित किया गया था कि "There shall be no state religion for the commonwealth of India or for any province in the commonwealth, nor shall the state either directly or indirectly endow any religion or give any perference or inpase any disability on account of religious belief or religious status....., No person shall by reason of his religion caste or creed be prejudiced in any way in regard to public employment, office of power or honour and the exercise of any trade or calling."[8] 1941 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के छात्रों को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा था कि "हम एक राष्ट्र हैं। भारत हिन्दुओं, मुसलमानों, ईसाईयों, पारसियों और सिक्खों की मातृभूमि है। हिन्दू राज्य और मुस्लिम राज्य के दिन अब बीत चुके हैं। अब हमें हिन्दुस्तान में हिन्दुस्तानी राज्य की स्थापना करनी चाहिए।"[9]

3. संघवाद और प्रान्तीय स्वायत्तता

पंडित मदनमोहन मालवीयजी एक दूरदर्शी राजनीतिज्ञ थे। देश की स्वाधीनता के लिए संघर्ष के दौरान ही उन्होंने भारतीय समाज व संस्कृति की विभिन्नताओं के अनुरूप एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना का सर्मथन किया था जहाँ शक्तियाँ केन्द्र और प्रान्तों के बीच विभाजित हो और प्रत्येक प्रान्त को प्रान्तीय स्वायत्तता मिली हुई हो। उन्हें इस बात का विश्वास था कि केवल संघवादी व्यवस्था ही देश में प्रत्येक जाति, धर्म, भाषा व प्रान्त का पर्याप्त प्रतिनिधित्व कर सकती है। सन् 1908 में नियुक्त प्रान्त की विधान कौंसिल के सदस्य की हैसियत से मालवीयजी ने विकेन्द्रीकरण कमीशन के सामने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए कहा, "प्रान्तीय सरकारें भारत सरकार की केवल प्रतिनिधि मात्र हैं। उन्हें अपने आर्थिक और अन्य सभी प्रश्नों की स्वीकृति भारत सरकार से लेनी पड़ती है। प्रान्तों की सारी व्यवस्था भारत सरकार के कठोर नियंत्रण में है बिना स्वीकृति के प्रान्तीय सरकारें कोई भी परिवर्तन नहीं कर सकती।"[10] प्रान्तीय स्वायत्तता विशेषकर आर्थिक मुद्दों पर मालवीयजी के विचारों की प्रासंगिकता इस तथ्य के अध्ययन से स्पष्ट हो जाती है कि वर्तमान भारतीय संघात्मक व्यवस्था में केन्द्र राज्य वित्तीय प्रावधान असंतोष व विवाद का कारण बने हुए हैं, राज्य सरकारें निरन्तर आर्थिक मामलों में ज्यादा स्वायत्तता की माँग कर रही हैं। मालवीयजी ने तत्कालीन केन्द्रीय सरकार के वित्तीय प्रावधानों पर असंतोष करते हुए यह बताया कि वर्तमान वित्त विभाजन की व्यवस्था गलत और पक्षपातपूर्ण है। संपूर्ण वित्त का केवल एक चौथाई राज्स्व ही राज्य सरकारों को प्रदान किया जाता है जबकि तीन चौथाई राजस्व केन्द्रीय सरकार को प्राप्त होता है। इसीलिए इस व्यवस्था में परिवर्तन कर एक न्यायपूर्ण और स्पष्ट वित्तीय विभाजन केन्द्र और प्रान्तों के बीच होना चाहिए।

Scanned with CamScanner

जिसके अन्तर्गत राज्य सरकारों को विकास कार्यों के लिए पर्याप्त धन मिले तथा केन्द्र सरकार केवल विदेशी मामले, रक्षा, मुद्रा, कर्ज, आयात कर, संचार एवं डाक जैसे विभागों को अपने अधीन रखे और शेष अपने राजकीय कहलाने वाले विभागों से सब कर प्राप्त करे। जिन साधारण राजकीय कार्यों के लिए उसे धन की आवश्यकता पड़े उसे वह निश्चित तथा विवेकपूर्ण सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक प्रान्त से यथाभाग ले सकती है। जनहित की दृष्टि से राज्यों के पास राजस्व की प्राप्ति व विनिमय में पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। विशेष परिस्थितियों में केन्द्र सरकार अतिरिक्त करों का प्रावधान तभी लागू करे जबकि प्रान्त या प्रान्तों ने केन्द्र द्वारा माँगी गयी अतिरिक्त सहायता को अस्वीकार कर दिया हो। तत्कालीन ब्रिटिश सरकार की वित्त-नीति और वित्त व्यवस्था की समीक्षा करते हुए मालवीयजी ने बताया कि "भारत सरकार संपूर्ण करों का अपने को स्वामी समझती है। संपूर्ण राजस्व का 'एक चौथाई से भी कम भाग' जनकल्याण सम्बन्धी कार्यों पर खर्च होता है। जिसका परिणाम यह है कि बाहर से इस साम्राज्य की जितनी तड़क-भड़क दिखाई दे रही है, उतनी ही भारतवासियों की दशा बुरी हो गयी है और जब तक इस व्यवस्था में परिवर्तन नहीं किया जायेगा तब तक जनता के अत्यन्त हितकर स्वत्वों की उन्नति असंभव है।"[11] उन्होंने माँग की कि प्रान्तीय वित्तीय व्यवस्था जो किसी सिद्धान्त पर आधारित नहीं है में परिवर्तन कर जनता की नैतिक और भौतिक उन्नति को अच्छे ढंग से बढ़ाने के लिए प्रान्तीय रायस्व का अधिक बड़ा हिस्सा युक्त प्रान्त की सरकार को दिया जाय। आर्थिक विषयों के अतिरिक्त राज्यों की स्वायत्तता के सन्दर्भ में मालवीयजी ने राज्यपालों के अधिकारों को भी सीमित करने का समर्थन किया और कहा कि राज्यपाल को राज्य विधान सभा की इच्छा के अनुरूप कार्य करना चाहिए। उनका सुझाव था कि राज्य विधान सभाओं को सही अर्थों में जनप्रतिनिधि संस्था बनाने के लिये विधान सभा सदस्यों की संख्या बढ़ायी जानी चाहिए। प्रान्तीय सरकारों के स्वरूप की चर्चा करते हुए उन्होंने बताया कि प्रान्तीय सरकारों की स्वायत्तता के साथ-साथ उनका स्वरूप भी परिवर्तित होना चाहिए। "कौशलपूर्ण व्यय, लाभयुक्त तथा न्यायपूर्ण कर तथा आय और व्यय का पूर्ण सामंजस्य तभी संभव है जब विवेकशील तथा परिश्रमी जनसमुदाय उस पर अपने विचारों द्वारा शासन करे अतएव जनता के विचारों को समुचित रूप से प्रकट करने के लिये व्वस्थापिका सभाओं में प्रतिनिधियों को स्थान देना चाहिए और उस विचार को प्रभावशाली बनाने के लिए प्रतिनिधियों की आय व्यय के कच्चे चिट्ठे पर वाद-विवाद करने का अवसर देना चाहिए।"[12]

भारत में संघवादी व्यवस्था की स्थापना के अन्य पक्षों की चर्चा करते हुए उन्होंने बताया कि संघीय वित्त के घाटे (substantial deficit) के मामलों में राज्यों का योगदान केन्द्र और राज्य सरकारों के प्रतिनिधियों की एक बैठक में तय किया जायेगा। प्रान्तीय सरकारों को संघीय सम्पत्ति पर कर लगाने का अधिकार नहीं होगा।

Scanned with CamScanner

संघीय सरप्लस (surplus) और विशिष्ट उद्देश्यों के लिए अनुदान और कोष (funds) का अनुपात जैसे मुद्दे दोनों स्तर की सरकारों के प्रतिनिधियों की संयुक्त बैठक में तय होंगे इत्यादि। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मालवीयजी ने देश के लिए एक शक्तिशाली संघ की स्थापना के साथ-साथ प्रान्तीय स्वायत्तता का भी जोरदार समर्थन किया जो आगे चलकर भारतीय संविधान की एक आवश्यक विशेषता बना। द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में उन्होंने भारत के लिए भावी संघवाद पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि युनाइटेड भारत में संघीय इकाईयों के पास इस बात की पूर्ण स्वतन्त्रता होगी कि वे अपने मामले में स्वयं निर्णय लें। उन्हीं के शब्दों में, "For the defence of motherland and for the progress of the entire people who live in that land were the people of the states would combine allegiance to the rulers of their own states with fidelity to our comman motherland."[13]

4. प्रतिनिधियात्मक प्रजातन्त्र, स्वदेशी और स्वराज्य

पंडित मदनमोहन मालवीयजी ने अन्य शासन प्रणालियों की तुलना में प्रतिनिधियात्मक प्रजातन्त्र को ही श्रेष्ठ माना क्योंकि इस प्रणाली में जनता के हितों, आकांक्षाओं और आशाओं का बेहतर प्रतिनिधित्व होता है। अपने विभिन्न लेखों और भाषणों में मालवीयजी ने प्रतिनिधियात्मक प्रजातन्त्र की सफलता हेतु स्वतन्त्रता, समानता, एकत्त्व और बन्धुत्त्व, अवसरों की समानता, विचार अभिव्यक्ति के अवसरों की प्राप्ति, प्रेस की स्वतन्त्रता, समाज के कमजोर वर्गों और महिलाओं की सुरक्षा की आवश्यकता पर बल दिया। भारत में प्रतिनिधि सरकार की स्थापना पर जोर देते हुए 1886 के कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में अपने ओजस्वी भाषण में उन्होंने कहा, "अब सरकार को यह बताना आवश्यक प्रतीत होता है कि देश के केवल कुछ भागों के लोगों ने ही प्रतिनिधि सरकार के सिद्धान्तों में आस्था प्रकट नहीं की बल्कि इस विशाल भारतीय उपमहाद्वीप के प्रत्येक प्रान्त और प्रेसीडेंसी के लोग बराबर से इसकी प्रशंसा करते हुए भारत में इसकी स्थापना करने को व्यग्र हैं।" आगे उन्होंने कहा कि "यदि अंग्रेजो के राजनीतिक बाइबिल का प्रथम कमाण्डमेन्ट 'बिना प्रतिनिधित्व के कर नहीं' (No taxation without representation) है। तब उनकी अन्तरात्मा हमसे कर वसूल करने में क्यों नहीं झकझोरती?..... अब हम गूँगे नहीं रहेंगे। भारत ने अपनी आवाज कांग्रेस में प्राप्त कर ली है और अब कांग्रेस में और इसके माध्यम से हम इग्लैण्ड से यह माँग करेंगे कि वह अपनी सच्ची परम्पराओं, अपनी मान्यताओं के अनुरूप स्वतन्त्र ब्रिटिश नागरिको की भाँति हमें स्वाधीनता का अधिकार दें।"[14]

इस सन्दर्भ में पंडित मोहन मालवीयजी ने सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और राजा सर टी. माधव राव द्वारा प्रस्तावित अर्डले नॉर्टन (Eardley Nortan) और भीष्मनारायण धर द्वारा अनुमोदित उस प्रस्ताव का जोरदार समर्थन किया जिसमें जन प्रतिनिधियों के

Scanned with CamScanner

व्यवस्थापिका कौंसिल में प्रवेश की बात कही गयी थी। इस अवसर पर अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा, "Gentlemen, the whole of Europe, without exception has declared that the most efficient and best form of government for any country which has made any advance in civilization is a government conducted not solely by the few for the many but to a greater or less extent by the many for themselves a government in fact, in which the representatives of the people have some potential share and if this be expedient for European countries, where the rulers and the ruled are of the same nationality and where they are of the same religion. I think it must be conceded that it is even more essential for India, which is inhabited by people whose habits, manners, customs, language, race and creed differ from those of their rulers. If we demand for India that there should be representatives of her people in the state councils, we only ask for what, not simply Europe, but America, Australia, and almost the whole civilised world have declared with one unanimous voice to be essential for any government that is to be suitable to any country, as it is only where the representatives of the people are allowed to take part in the administration, that the wants and wishes, the aspirations and grievances of the people can be adequately setforth, properly understood or duly provided for.....

What is it that we see year after year? People assembling from all parts of India from the Punjab, Sind, Assam, Madras, Bengal, Bombay, the N. W. Provinces, Oudh, the Central provinces, from every province, from every town coming together to implore government humbly to grant this reform, which is, after all, their birthright as freeborn British subjects."[15]

मालवीयजी का विचार था कि भारतीयों के लिए प्रतिनिधियात्मक सरकार इसलिए भी अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि ब्रिटिश सरकार को भारत के लोगों के कल्याण में कोई दिलचस्पी नहीं है, उदाहरणत: 675 सदस्यीय ब्रिटिश संसद में जब भारत के लिये बजट पेश किया गया तब मात्र 29 सदस्य ही उपस्थित थे इसीलिए भारत के लोगों के समुचित हितों के प्रतिनिधित्व के लिए देश में भारतीयों की प्रतिनिधि सभा का गठन किया जाना चाहिए।

भारत में प्रतिनिधियात्मक प्रजातन्त्र की स्थापना की माँग के साथ ही पंडित मदनमोहन मालवीयजी ने स्वदेशी और स्वराज्य को देश के लिए अत्यन्त आवश्यक बताया और समस्त देशवासियों से मन, वचन और कर्म से स्वदेशी के प्रति समर्पित होने तथा देश की आर्थिक समृद्धि के लिए भारत निर्मित वस्तुओं के प्रयोग का आह्वान किया। उनका दृढ़ विश्वास था कि स्वदेशी का प्रयोग ही स्वराज्य की प्राप्ति में सहायक

Scanned with CamScanner

होगा। 23 दिसम्बर 1907 को सूरत कांग्रेस की बैठक में स्वदेशी आन्दोलन का समर्थन करते हुए उन्होंने कहा कि, "देश के उत्थान और जनता की समृद्धि में जितने आवश्यक प्रश्न वर्तमान हैं उनमें स्वदेशी आन्दोलन का प्रश्न सबसे अधिक महत्त्व रखता है। देशभक्ति के लिए इसकी जरूरत है। मानवता का यह धर्म बतलाया गया है। .....आजीवन इस व्रत का पालन करना धर्म है।" उन्होंने भारतवासियों से अपील करते हुए आगे कहा "इसे मानव जाति के प्रति अपना कर्तव्य और देश के प्रति अपना धर्म मानकर आपको सब तरह से जीवन भर के लिए पूरा स्वदेशी होना चाहिए। ऐसा अन्य कोई भी देश नहीं है जहाँ पर मातृभूमि की सेवा करने का इतना विस्तृत क्षेत्र हो, जितना की इस अभागे देश में है। मेरी बुद्धि में अन्य कोई देश ऐसा नहीं मिलेगा जहाँ भारत की दरिद्र जनता के अतिरिक्त मानव जाति की अधिक सेवा की जा सके।"[16]

स्वदेशी के साथ-साथ स्वराज्य का अर्थ स्पष्ट करते हुए सन् 1909 के लाहौर में होने वाली चौबीसवीं भारतीय राष्ट्रीय महासभा के अधिवेशन में अध्यक्ष पद से बोलते हुए उन्होंने कहा, "स्वायत्त शासन का अर्थ है- भारत में देश के निर्वाचित सदस्यों द्वारा जनता का शासन, शिक्षित समाज की यह भावना इंग्लैण्ड के उस सत्साहित्य के अध्ययन का अवश्यम्भावी परिणाम है जो कि स्वतन्त्रता के प्रेम से ओत-प्रोत है और जो इस सत्य को स्पष्ट करता है कि स्वायत्त शासन ही उत्तम कोटि का शासन है।"[17] मालवीयजी निरन्तर यह माँग करते रहे कि ब्रिटिश सरकार भारत के राजनीतिक उत्थान व कल्याण के लिए स्वभाग्य निर्णय का सिद्धान्त देश के लिए शीघ्रातिशीघ्र लागू करे। स्वराज्य प्राप्ति की तीन आवश्यक शर्तों का उल्लेख करते हुए मालवीय जी ने बल आत्म-निर्णय का अधिकार हिन्दू-मुस्लिम एकता और शिक्षा की उत्तम व्यवस्था पर दिया। दिसम्बर 1918 में देश की जनता को सम्बोधित करते हुए दिल्ली राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में उन्होंने कहा, "यदि आप उस स्वभाग्य निर्णय को स्वयं बरतेंगे और समता, स्वतन्त्रता और प्रेम का संदेश लोगों में जाकर फैलायेंगे, यदि आप अपने प्रत्येक भाई में चाहे वह कितनी ही नम्र और नीची स्थिति में हो, यह भाव पैदा कर देंगे कि उसके अन्दर भी वही ईश्वरीय तेज स्थित है जो कि ऊँची स्थिति के पुरुष के अन्दर होता है, और ब्रिटिश साम्राज्य की अन्य सब जनता के समान ही उसका भी बराबरी का अधिकार है और उसे यह भी सिखा दें कि उसे वह अधिकार माँगना चाहिए, तब समझ लें कि आपने अपना भविष्य स्वयं ही निश्चित कर लिया।"[18] इसी प्रकार हिन्दू-मुस्लिम एकीकरण पर बल देते हुए उन्होंने जून 1923 को लाहौर की एक विराट सभा में कहा कि, "स्वराज्य की सीढ़ी के लिए हमारा सबसे पहला काम एकता को स्थापित करना है।.... मैं सदैव अपने धर्म का दृढ़ विश्वासी और पाबन्द रहा हूँ, परन्तु किसी के धर्म का अपमान करने का ख्याल तक मेरे दिल में कभी नहीं आया। जब मैं किसी गिरजे या मस्जिद के पास से गुजरता हूँ तब मेरा सिर सम्मान से झुक जाता है। जब हमारा परमात्मा एक है तब क्या कारण कि हम आपस में लड़ें। भूमि एक, देश

Scanned with CamScanner

एक, जल एक, वायु एक और फिर आपस में फसाद। यह आश्चर्य और दु:ख की बात है।''[19] इस प्रकार अपने लेखों और भाषणों में मालवीयजी ने स्वराज्य और स्वशासन के लिए देश की पराधीन जनता के मनोबल को ऊँचा उठाने स्वाधीनता प्राप्ति के लिए बगैर हताश हुए धैर्यपूर्वक निरन्तर आगे बढ़ने, शारीरिक और सैनिक शिक्षा के साथ-साथ स्वराज्य की सेना तैयार करने, आर्थिक मामलों में राष्ट्र को स्वावलम्बी बनाने के लिए कृषि-वाणिज्य की उन्नति पर ध्यान देने, छूवाछूत जैसी सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करने, सभी स्थानों पर पंचायतों की स्थापना कर उसमें सभी वर्ण के लोगों को स्थान दिये जाने और भारत के प्राचीन ऋषियों द्वारा बतायी गयी जीवन पद्धति लागू करने तथा सभी को साक्षर बनाने के उद्देश्य से संपूर्ण देश के लिए एक व्यापक लोक शिक्षा समिति स्थापित करने के लिए प्रेरित किया। 1936 के फैजपुर में होने वाले कांग्रेस के इक्यावनवें अधिवेशन में श्री राजेन्द्रप्रसाद के 'राष्ट्रीय सरकार और चुनाव' सम्बन्धी प्रस्ताव का सर्मथन करते हुए उन्होंने कहा, ''हम लोगों को यह निश्चय करना है कि हम लोग तब तक सुख से न बैठेंगे जब तक स्वतन्त्रता न प्राप्त कर लेंगे। हमें शर्म आनी चाहिए कि हम स्वतन्त्र नहीं है। .....यह अत्यन्त लज्जा और दु:ख की बात है। हमें तीनसौ-पैंसठ दिन निरन्तर प्रयत्न करना पड़ेगा। अपनी कायरता को दुर भगा दो, बहादुर बनो और प्रतिज्ञा करो कि आजाद होकर ही हम दम लेंगे।''[20]

5. स्वतन्त्रता, समानता और न्याय की अवधारणा

गाँन्धी, विवेकानन्द और रवीन्द्रनाथ टैगोर की भाँति मालवीयजी ने भी मूलत: स्वतन्त्रता के आध्यात्मिक पक्ष का समर्थन किया। एक ऐसी स्वतन्त्रता जो मनुष्य को बाह्य और आन्तरिक मामलों में पूर्ण स्वतन्त्र कर आत्म साक्षात्कार की उपलब्धि कराती है। पंडित मदनमोहन मालवीयजी के अद्‌भुत व्यक्तित्त्व में हिन्दू धर्म और दर्शन के उच्चतम मूल्यों तथा विज्ञान और कानून के तकनीकी पूर्ण तथ्यपूर्ण पक्षों का अद्‌भुत समन्वय था एक तरफ जहाँ उन्होंने भारतीय सांख्य और वेदान्त दर्शन का अध्ययन किया भगवद्‌गीता के प्रति मन प्राण से समर्पित रहे वहीं दूसरी ओर ज्यूरिसप्रूडेन्स भी पढ़ा। जर्मन दार्शनिक हीगल की भाँति मालवीयजी ने स्वतन्त्रता (Freedom) और धर्म को एक दूसरे का पर्यायवाची व मानव उत्थान के लिए आवश्यक माना। उनका दृढ़ विश्वास था कि व्यक्ति और राष्ट्र दोनों के ही सर्वतोमुखी विकास व अभ्युदय के लिए स्वतन्त्रता अपरिहार्य है। एक विदेशी सरकार की उपस्थिति किसी भी देश के लोगों के लिए बहुत बड़ा अभिशाप है क्योंकि यह जनता के पौरुष को नष्ट कर उनकी नैतिक प्रवृत्ति को बुरी तरह विकृत कर देता है। उन्होंने कहा था, ''स्वतन्त्रता का न होना उन्नति के अवसरों को खोना है, उन्नति के अवसरों को खोना अध:पतन है और अध:पतन मृत्यु के तुल्य है।'' वे आजीवन न्याय, स्वतन्त्रता, समता और जन कल्याण के लिए संघर्ष करते रहे। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की भाँति मानव स्वतन्त्रता की रक्षा के निमित्त उन्होंने भारत रक्षा विधेयक की कुछ

Scanned with CamScanner

धाराओं, रौलेट बिल, कुली प्रथा के अमानवीय पक्षों और प्रेस की स्वतन्त्रता को प्रतिबन्धित करने के प्रावधानों का विरोध किया।

1910 के प्रारम्भ में जब गवर्नर जनरल और उनकी कार्य परिषद् ने एक प्रेस विधेयक केन्द्रीय विधान कौंसिल द्वारा पास कराने का निश्चय किया तब मालवीयजी ने प्रेस की स्वतन्त्रता का समर्थन करते हुए इस विधेयक की समीक्षा कर सरकार से अनुरोध किया कि विधेयक को वापस ले लिया जाय और यदि संभव न हो तो पुनः विचार करने के लिए इसे स्थगित कर दिया जाये। इस सन्दर्भ में गोपालकृष्ण गोखले द्वारा मालवीयजी को समझाने के बावजूद महामना ने खुलकर इस विधेयक का विरोध किया। अन्त में यह 16 वोटों के मुकाबले में 42 वोटों से रद्द हो गया। इस प्रकार स्पष्ट है कि मालवीयजी ने प्रेस की स्वाधीनता के साथ कोई समझौता नहीं किया। इसी प्रकार उन्होंने सरकार द्वारा 1911 में कौंसिल में प्रस्तुत 'विद्रोह सभा विधेयक' और 1914 में 'भारत रक्षा विधेयक' का भी विरोध किया। 'भारत रक्षा विधेयक' पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए उन्होंने स्पष्ट किया कि यद्यपि युद्ध की विषम परिस्थितियों में देश की रक्षा के लिए विशेष अधिकारों का प्रयोग किसी सीमा तक अनिवार्य है फिर भी कानून द्वारा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की रक्षा भी आवश्यक है। उन्होंने इस विधेयक की धारा 3 और 6 का विशेष रूप से विरोध करते हुए आशंका व्यक्त की कि यदि मौत और काला पानी जैसी सजा में मुकदमें की जाँच सरसरी ढंग से की गयी तो अटल अन्याय की सम्भावना रहेगी। इस विधेयक के सन्दर्भ उन्होंने माँग की कि मिलिट्री (military) में विभिन्न पदों पर कार्यरत भारतीयों और यूरोपियनों के साथ समान व्यवहार किया जाना चाहिए। भारतीयों को भी उनकी योग्यता के आधार पर उच्च पदों पर कार्य करने का अवसर दिया जाना चाहिए तथा इस सम्बन्ध में सरकार की ओर से किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए। मालवीयजी ने पुलिस सेवा में भी भारतीयों को बराबरी से प्रवेश दिये जाने और लंदन में आयोजित होने वाली प्रवेश परीक्षाओं में इस देश के लोगों को स्थान दिये जाने की माँग की। इसी प्रकार 1919 में उन्होंने रौलेट बिल का जबरदस्त विरोध किया और जब यह बिल सरकार द्वारा पास कर दिया गया तब मालवीयजी ने कौंसिल की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया और दोबारा कौंसिल में चुनकर पहुँचने पर उन्होंने डटकर ओडायर और डायर के अत्याचारों के लिए भारत सरकार और पंजाब सरकार की भर्त्सना की और घटनाओं की जाँच के लिए शाही कमीशन की माँग करते हुए उन्होंने बताया कि यह बिल अन्यायपूर्ण स्वतन्त्रता के सिद्धान्त के विपरीत और व्यक्ति के अधिकारों को कुचलने वाला है।

ब्रिटिश सरकार के अन्यायपूर्ण तथा मानवीय स्वतन्त्रता पर प्रहार करने वाले बिलों के विरोध के साथ-साथ मालवीयजी ने संवैधानिक सुधारों के लिए अपने सुझाव

Scanned with CamScanner

भी दिये जैसा कि मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट पर विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने माँग की कि यह आश्वासन दिया जाना चाहिए कि हमारी अपनी पूर्ण स्वाधीन उत्तरदायी सरकार आगामी 20 वर्षों में बन जायेगी। उनका सुझाव था कि एक्जीक्यूटिव कौंसिल के कम से कम आधे सदस्य भारतीय होने चाहिए। लोक सेवा, पुलिस सेवा तथा सेना में 50 प्रतिशत पद भारतीयों के लिये होने चाहिए। राज्य विधान सभाओं में बहुमत प्राप्त निर्वाचित सदस्यों को मंत्री बनाया जाना चाहिए और संपूर्ण देश में राजनीतिक सुधारों को लागू किया जाना चाहिए इत्यादि।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि किस प्रकार मालवीय जी ने आजीवन स्वतंत्रता की दीपशिखा प्रज्वलित करने का प्रयास अनवरत जारी रखा कलकत्ता कांग्रेस के अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने कहा था कि यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम हर उस कानून का विरोध करें जिससे हमारी अभिव्यक्ति और समूह की स्वतन्त्रता प्रतिबन्धित होती है। उनकी इच्छा थी कि राज्य का संरक्षण बिना किसी भेदभाव के सूर्य की किरणों और बारिश की बूँदों की भाँति सभी को समान रूप से प्राप्त होना चाहिए। 1916 में उन्होंने भारतीय कुली प्रथा को मानवता के लिए अभिशाप बताते हुए प्रस्ताव किया कि इस कुली प्रथा का अन्त करने के लिए सरकार हरसंभव प्रयास करना चाहिए।

पंडित मदनमोहन मालवीयजी के चिंतन का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पक्ष वकालत के पेशे से जुड़ा हुआ था। वे हर स्तर पर न्याय की स्थापना करना चाहते थे। उन्होंने सामाजिक न्याय, आर्थिक न्याय के साथ ही कानूनी न्याय की स्थापना पर विशेष जोर दिया और निष्पक्ष न्याय की प्राप्ति के लिए स्वतन्त्र और निष्पक्ष न्यायपालिका की स्थापना तथा शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त के आधार पर न्यायपालिका की कार्यपालिका से पृथकता का समर्थन किया।

उपर्युक्त वर्णित विचारों के अतिरिक्त उनके राजनीतिक चिंतन के अन्य पक्षों में मानवतावाद उनका संविधानवाद, स्थानीय स्वशासन की अवधारणा, अहिंसामूलक राज्य की स्थापना, राजनीति का आध्यात्मीकरण इत्यादि महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने अन्याय का प्रतिकार करने के लिए संवैधानिक माध्यमों का समर्थन किया। वे अहिंसात्मक साधनों पर चलते हुए सविनय अवज्ञा और सत्याग्रह को भी संवैधानिक स्वीकार करते थे और आवश्यकता पड़ने पर इनके उपयोग को उचित समझते थे। महात्मा गाँन्धी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, स्वामी विवेकानन्द की भाँति वे भारतीय राजनीतिक दर्शन की उस परम्परा की प्रमुख कड़ी थे। जहाँ धर्म से पृथक राजनीति की कोई कल्पना ही नहीं है, वे आजीवन संयुक्त स्वशासित भारतीय राष्ट्र की उपलब्धि के लिए संघर्ष करते रहे। देश के सम्यक प्रकार के अभ्युदय व नवजीवन के निर्माण के प्रयासों में उनका योगदान निश्चय ही अतुलनीय है। गाँन्धी जी ने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा था कि "देश सेवा ही मालवीय जी का भोजन है। वे इसे कभी नहीं छोड़ सकते। जिस तरह भगवद्गीता का नित्य पाठ छोड़ना असंभव है, उसी तरह देश सेवा भी उनके जीवन में साँस की तरह

Scanned with CamScanner

ओत-प्रोत है। इसीलिए जब तक उनकी साँस है, तब तक देश सेवा होती रहेगी। कौन जानता है कि वे इसे स्वर्ग में भी साथ ले जायें।'' लेकिन उदारवादी, दीन-दुःखियों की सहायता को तत्पर महामना पंडित मदनमोहन मालवीय तो निष्काम कर्मयोगी की भाँति दुःख से त्रस्त जनता के दुःख को दूर करना चाहते हैं, अँधेरी आँखों को रोशनी चाहते हैं। उन्हें न तो राज्य की अभिलाषा है, न ही स्वर्ग और न ही मोक्ष की।

संदर्भ

1. लेजीस्लेटिव असेम्बली डिबेट Vol. VI, भाग २, सितम्बर 7, 1925, पृ० 996-97
2. वही
3. *Parmanand, Madan Mohan Malviya- An Historical Biography* (मालवीय अध्ययन संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, 1985) पृ० 164 से, अनुवादित मेरे द्वारा।
4. मेरा अनुवाद, वही पृ० 165
5. Prof. Chandra Kala Padia, 'Some Reflections on Mahamana's Secular Thought' प्रकाशित लेख, *प्रज्ञा*, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय प्रत्रिका, महामना स्मृति अंक 39-41 (भाग 1-2) 1993-1996, संपादक डॉ० राममोहन पाण्डे द्वारा, पृ० 260 से, अनुवादित मेरे द्वारा।
6. इंडियन क्वार्टली रजिस्टर, 1927, जि० 2, पृ० 408-410
7. मालवीयजी की जीवन झलकियाँ, पृ० 168
8. नेहरू रिपोर्ट, क्लाज (xiii), पृ० 102-103
9. आज, अक्टूबर 10, 1941, मालवीयजी का भाषण इलाहाबाद विश्वविद्यालय विद्यार्थी संगठन के समक्ष।
10. Pt. Sitaram Chaturvedi (ed.) *Mahamana Pt. M.M. Malviya*, Vol. 3, Kashi, Paush Krishnashtami, 1973 pp 142-143.
11. वही, पृ० 144
12. वही, पृ० 146
13. I. R. T. C., Second Session, Vol. I, p. 193
14. क्रम 3, पृ. 64 से अनुवादित मेरे द्वारा
15. वही, पृ० 65
16. Pt. Sitaram Chaturvedi (ed.), *Mahamana Pt. M. M. Malaviya*, Vol. 18. Kashi Paush Krishnashtami, 1973 V.S. pp. 319-320.
17. वही, पृ० 273
18. वही, पृ० 273
19. वही, पृ० 90
20. वही पृ. 287

Scanned with CamScanner